बहुभाषिता

एक कक्षा स्रोत

रमाकान्त अग्निहोत्री

आज के परिदृश्य में, बहुभाषावाद ऐसी स्वाभाविक घटना मानी जाने लगी है जिसका सकारात्मक सम्बन्ध विवेकपूर्ण आचरण (संज्ञानात्मक व्यवहार) एवं विद्यालयों में प्राप्त सफलता से है। फिर भी, इसमें छिपी अपार सम्भावनाओं का कक्षाओं में पूरी तरह से इस्तेमाल नहीं हो पाया है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भाषा शोध बहुभाषावाद के महत्व को उजागर करती है। फिर भी, कक्षाओं में, खासकर भाषा की कक्षाओं में एकभाषावाद का प्रचलन अधिक देखने को मिलता है। बच्चे जो भाषा घर एवं अपने परिवेश में इस्तेमाल करते हैं, वे विद्यालयों में उपेक्षित हैं एवं उनका प्रयोग विद्यालयों में हेय दृष्टि से देखा जाता है।

भाषा में विविधता, लक्षित भाषा सीखने की राह में एक बाधा समझी जाती है। स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषय उस विशिष्ट भाषा के माध्यम से ही पढ़ाए जाते हैं एवं भाषा की कक्षा में उस लक्षित भाषा को छोड़कर अन्य भाषा का प्रयोग वर्जित माना जाता है। इस तरह से वे बच्चे, जो समाज में पारम्परिक रूप से पिछड़े हुए हैं, उनमें स्कूलों में उनकी अपनी भाषा की नकारात्मक छवि का स्टिरियोटाइप और भी ज़्यादा पुख्ता होता जाता है। फलतः भाषा भी उनके सामाजिक शोषण को बढ़ावा देती है। समय के साथ हम ऐसी स्थिति में पहुँच गए हैं जहाँ सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से उदासीन सहानुभूतियाँ उपेक्षित वर्ग की भाषा को नुकसान ही पहुँचाएँगी। ज़रूरत इस बात की है कि भाषा सजगता को न्याय एवं समानता हेतु सामाजिक संघर्ष का एक अभिन्न अंग बनाया जाए। यदि अर्थपूर्ण और सृजनात्मक शिक्षा सामाजिक संघर्ष की कुंजी है तो भाषा सभी प्रकार की शैक्षणिक क्रियाओं का केन्द्र-बिन्दु है। हमारा अधिकतम ज्ञान, भाषा के माध्यम से ही अर्जित किया जाता है तथा भाषा संरचनाएँ हमारे बीच मौजूद सामाजिक

विविधताओं एवं शोषण को समाहित किए रहती हैं, इसके अलावा भाषा गहनता से हमारे विचारों की संरचना तथा उनकी अभिव्यक्ति की सीमाएँ तय करती हैं।

इतिहास

जैसा कि न्यूमार्क (1966) ने हमें याद दिलाया, 'हम भली-भाँति जानते हैं कि भाषा कैसे सीखी जाती है फिर भी हम इसके सीखने की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करते रहते हैं।' भाषा सबसे बेहतर तब सीखी जाती है, जब हमारा ध्यान भाषा सीखने पर केन्द्रित न हो। वास्तव में, बहुभाषी समाज में अधिकांश बच्चे एक साथ कई भाषाएँ सीखते हैं एवं प्रयोग करते हैं क्योंकि उनका ध्यान भाषा सीखने पर नहीं, बल्कि उस भाषा के शब्दों में छिपे सन्देश पर केन्द्रित होता है। भाषा सीखने की प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए अनौपचारिक माहौल आवश्यक है। सीखने वाला सभी प्रकार की व्यग्रता से मुक्त तथा सिखाने वाला एक मित्र, पर्यवेक्षक एवं सहायक की भूमिका में हो तथा सीखने की अधिकतम प्रक्रिया अर्थपूर्ण कार्य एवं संवादों के सामूहिक आदान-प्रदान पर आधारित होनीचाहिए।

परन्तु भाषा शिक्षण का इतिहास यह दर्शाता है कि सिखाने के तरीके इन बुनियादी सिद्धान्तों से लगातार दूर होते चले आए हैं। त्रुटिहीनता के प्रति असीम लगाव, संरचनाओं व नियमों को याद करना और चन्द चुनिन्दा कथानकों तक सीमित रहना, यह सब पाणिनी[1] काल से चला आ रहा है, जिसे आगे चलकर ग्रीक, रोमन और बाद में अँग्रेज़ों एवं अमरीकियों ने बखूबी अपनाया। विश्व के विभिन्न उपनिवेशक देशों ने नियम बनाने का बीड़ा उठाया, न केवल अपनी भाषाओं के लिए बल्कि अपने अधीन उपनिवेश बनाई गई जनता की भाषा के लिए भी। उदाहरण के लिए, कई क्षेत्रीय एवं अलिखित भारतीय भाषाओं को अपना पहला लिखित दस्तावेज़ मिशनरियों ने 'बाइबल' के रूप में प्रस्तुत किया। भाषा बोलने वाले स्थानीय लोगों के लिए भी, उनकी भाषा के नियम-कायदे ब्रिटिश मिशनरियों द्वारा ही गढ़े गए, जो स्वाभाविक रूप से अँग्रेज़ी भाषा के स्वर-विज्ञान से काफी हद तक प्रभावित थे।[2]

फिर भी, उस समय द्वितीयक या विदेशी भाषाओं का सीखना, सीखने वाले की मूल भाषा के तिरस्कार के

---

[1] *पाणिनी 5वीं शताब्दी के व्याकरणविद जिनकी संस्कृत संहिता को भाषा के लिए मानकीकृत माना जाता है। आज भी संस्कृत के भाषागत शुद्ध प्रयोग के लिए उसी का सहारा लिया जाता है।*

[2] *लगभग इसी तरह की प्रक्रिया अफ्रीका, खास तौर पर दक्षिण अफ्रीका में भी चली जहाँ क्रिश्चियन मिशनरीज़ ने ईसा मसीह के उपदेश को फैलाने के लिए वहाँ की क्षेत्रीय भाषाओं का वर्णन और उन्हें लिखने के तरीके प्रस्तुत किए। इस प्रक्रिया में एक ही भाषा की विविध बोलियों/स्वरूपों को उन्होंने अक्सर एकदम अलग भाषाएँ करार कर दिया।*



सन् 1909 का भारत का भाषाई नक्शा। इसमें आर्य भाषा और बोलियों को बोलने वाले इलाकों को दर्शाया गया है। द्रविड भाषाई इलाकों को एक दूसरे नक्शे में दर्शाया गया था। ब्रिटिश हुकुमत के दौरान भारत के भाषाई वैविध्य को विभेद की तरह देखा गया। इसके चलते हिन्दोस्ताँ की भाषाएँ-बोलियाँ भी अँग्रेज़ी भाषा व साहित्य से प्रभावित हुईं थीं।

रूप में नहीं जाना जाता था, जैसा कि आज समझा जाता है। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी की भाषा सीखने की अधिकांश प्रवेशिकाएँ[3] द्विभाषी हुआ करती थीं तथा आसानी से किसी भी भाषा में प्रयोग की जा सकती थीं। ये प्रवेशिकाएँ भाषा सीखने हेतु रोज़मर्रा की वास्तविकताओं एवं प्रचलित क्रिया-कलापों पर आधारित थीं। इन भाषाओं का इस्तेमाल प्रायः शब्दार्थ एवं व्याकरण सिखाने हेतु किया जाता था एवं अनुवाद हेतु दिए गए अभ्यास प्रायः ऐसे विषयों पर आधारित होते थे, जिनमें दोनों भाषाओं से लिए गए शब्द एवं व्याकरण दिए गए परिप्रेक्ष्य में भली-भाँति समझे जा सकें। व्यापार एवं यात्रा जैसे व्यावहारिक पहलू भी इनमें गूँथे रहते थे।

[3] *प्राइमर, एक परिचयात्मक किताब जो प्राथमिक रूप से बच्चों को पढ़ना सिखाने में इस्तेमाल होती है (संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी)।*

होबार्ट 'द टयूटर,' जो कि अँग्रेज़ी सिखाने के लिए तैयार की गई पहली प्रवेशिका थी, के बारे में बताते हैं। इसका प्रकाशन 1779 ई. में बंगाल के सिरमपुर में हुआ था। यह मुख्यतः सहज एवं मनोरंजक दैनिक कार्य-कलापों से सम्बन्धित द्विभाषी वार्तालाप (संवाद) पर आधारित था, जिसमें पुराने तथा अलकृंत शब्दों की जगह साधारण बोलचाल वाले शब्दों का इस्तेमाल किया गया था।

बहुत-से कारक थे जिन्होंने मिलकर विविधता को दरकिनार करते हुए एकभाषिता को स्वीकृत मानक बना दिया, और 'एकदम-सही के प्रति अस्वाभाविक लगाव' सब तरफ चलन में आ गया। देशी भाषाओं को 'वर्नेक्यूलर,' जो केवल घरों एवं गौण परिवेश में बोलचाल के लिए ही उपयुक्त हैं, कहकर उनको हेय करार देना ब्रिटिश सरकार के हित में था। वे पारम्परिक एवं सांस्कृतिक तथ्य व जानकारियाँ, जो इन भाषाओं द्वारा व्यक्त की जाती थीं, उन्हें भी गलत ठहरा दिया जाता था। उदाहरण के लिए, भारत के परिप्रेक्ष्य में, मैकॉले[4] के विचार थे कि अरबी एवं संस्कृत जैसी सांस्कृतिक भाषाओं को दी जाने वाली प्रशासनिक एवं वित्तीय सुविधाएँ समाप्त कर दी जाएँ तथा अँग्रेज़ी साहित्य एवं इतिहास को अनिवार्य विषय बनाने के साथ ही शिक्षा का माध्यम अँग्रेज़ी कर दिया जाए। मैकॉले का विचार था कि ऐसा करना 'प्रशासन' एवं 'भारतीय जनता' दोनों के हित में होगा। परन्तु, वास्तव में वह इस माध्यम से भारतीय जनता के बीच एक ऐसा वर्ग तैयार करना चाहता था, जो लहू एवं रंग से तो भारतीय हो परन्तु, पसन्द, विचार, बुद्धि एवं नैतिकता से ब्रिटिश हो। उसका मानना था कि 'वर्नेक्यूलर' भाषाओं का हित भी इन अँगरेज़ीदाँ भारतीयों द्वारा अच्छे से निभाया जा सकेगा।

अँग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा पाने वाले अभिजात वर्ग एवं 'वर्नेक्यूलर' भाषा से शिक्षा प्राप्त करने वाले वंचित वर्ग के बीच सामाजिक विभेद से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये नीतियाँ उपनिवेशों की जनता के लिए विनाशकारी साबित हुईं। यही वजह है कि हम समस्त औपनिवेशिक देशों में स्थानीय भाषाओं में शिक्षण और उन सब भाषाओं की स्थिति इतनी निराशाजनक पाते हैं। उपनिवेशकों को किसी भी हाल में अपनी भाषा एवं संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध करनी थी। इसके लिए शिक्षा प्रणाली में हस्तक्षेप से बेहतर कदम और क्या हो सकता था?

मैग्नेटिक टेप का आविष्कार एवं विस्तार, भाषा प्रयोगशाला, वर्तमान समाजशास्त्रीय पोज़िटिविज़्म, मनो-

---

[4] मैकॉले, एक ब्रिटिश इतिहासकार जिसने भारत में चार बरस बिताए, इस दौरान उसके पास शिक्षा के राष्ट्रीय तंत्र की संरचना विकसित करने की ज़िम्मेदारी थी जिसके ज़रिए भारत के रहवासियों का पश्चिमी सभ्यता के हिसाब से उन्मुखीकरण किया जा सके।

वैज्ञानिक व्यवहारवाद, एवं भाषाई संरचनावाद, सभी की आवश्यकता धारा-प्रवाह वक्तव्य, त्रुटिहीनता एवं भाषा पर सहज नियंत्रण है। इस परिदृश्य में सीखने वाले को एक खाली बर्तन माना जाता है जिसे परिवेश के ज़रिए मनमाफिक रूप से प्रोग्राम किया जा सकता है। भाषा को मात्र संरचनाओं के एक समूह के रूप में देखा जाता था एवं सीखने की प्रक्रिया को एकरेखीय के साथ-साथ योगात्मक समझा जाता था।

यही बुनियादी सिद्धान्त हैं, जो डायरेक्ट-मेथड और श्रवणभाषावाद जैसे भाषा सीखने के तरीकों को आधार प्रदान करते हैं। इन विचारों के प्रति संज्ञानात्मक यानी कॉग्निटिव सिद्धान्त की प्रतिक्रिया ने एक देसज वक्ता की परिकल्पना को जन्म दिया है। इस सैद्धान्तिक प्रतिक्रिया का सकारात्मक प्रभाव यह हुआ कि अब भाषा सीखने वाले को अयोग्य की बजाय सहज रूप से योग्य, जिसमें विकास की अपार सम्भावनाएँ हों, समझा जाने लगा। सामाजिक भाषाशास्त्र के विकास ने भाषा प्रशिक्षण के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलू को उजागर किया।

फिर भी संज्ञानात्मक विज्ञान तथा सामाजिक भाषाशास्त्र के क्षेत्र में गैर-सामाजिक एवं गैर-राजनैतिक कार्य प्रकृति ने समूचे भाषा शिक्षण तंत्र की बुनियाद को कमज़ोर कर दिया है। यहाँ तक कि नवीन पद्धतियाँ एवं मॉडल जैसे मॉनिटर मॉडल, अभिव्यक्तिशील एप्रोच, मूक पद्धतियाँ, संकेत विज्ञान कोश एवं पूर्ण भौतिक



साइंस एंड सोसायटी डॉट कॉम से साभार

प्रतिक्रिया इत्यादि के प्रयोग में आ जाने के बाद भी आज भी प्रमुख मॉडल 'एकभाषी' है एवं उच्चवर्ग द्वारा स्थापित मानदण्ड को प्राप्त करना ही लक्ष्य है।

विश्व व्यापार एवं विपणन के दबाव ने इस स्थिति को और बदतर बना दिया है क्योंकि इनके प्रभाव से आज के समय में भाषा-शिक्षण को मात्र एक निश्चित कुशलता प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। एक ऐसी प्रक्रिया, जो भाषा एवं सामाजिक संरचना की आलोचनात्मक जागरूकता प्रदान कर सकती है उसे केवल भाषा बोलना तथा सुनना, पढ़ना तथा लिखना तक सीमित कर दिया गया है। अधिकाधिक उससे कुशल सम्प्रेषण सिखाया जाता है। एक बहुभाषाई सजगता जिसके अन्तर्गत भाषा संरचना, संकलन, एवं बदलाव या फिर वे कार्य-प्रणालियाँ जिनमें भाषा सामाजिक शोषण को प्रोत्साहित करती हो - वे किसी भी भाषा शिक्षण पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं होते। जैसा कि फेयरक्लॉग कहते हैं:

"... (ऐसे) भाषा शिक्षण जो बिना एक आलोचनात्मक रवैया अपनाए भाषा की निपुणता प्रदान करने पर केन्द्रित होते हैं, वे प्रशिक्षु के प्रति अपना दायित्व पूरा नहीं कर रहे होते। प्रजातंत्र में जनता प्रभावकारी नागरिक नहीं बन पाएगी, यदि शिक्षा उनमें उनके भौतिक एवं सामाजिक परिवेश के मुख्य घटकों



फोटोः माधव केलकर

के प्रति आलोचनात्मक योग्यता का विकास नहीं करती। अगर हम चाहते हैं कि शिक्षा नागरिकता के लिए प्रभावी स्रोत उपलब्ध कराए, तो अपनी बोलचाल की भाषा के तौर-तरीकों के प्रति आलोचनात्मक सजगता अनिवार्य है।"

बहुभाषी समाज एवं भाषा शिक्षण

ज़रूरत इस बात की है कि समाज में बहुभाषी लोगों को सामान्य माना जाए एवं सहजता से स्वीकार किया जाए। बहुभाषी समाज न सिर्फ सामान्य हैं परन्तु दुनिया में सबसे अधिक मात्रा में पाए जाने वाले इन्सानी-समूह हैं। रूस, चीन, भारत, अफ्रीका - विश्व के सबसे घनी आबादी वाले देश, सभी बहुभाषीय हैं।

जैसा कि इलिश का कहना है, एकदम अलग-थलग रह रहे जनजातीय समुदायों या औद्योगिक समाज, जिन्होंने कई पीढ़ियाँ अनिवार्य स्कूली शिक्षा में गुज़ारी हैं, को छोड़कर अन्य समुदायों में एक-भाषीयता का प्रचलन आम बात नहीं है। संज्ञानात्मक लचीलापन एवं बहुभाषी समाज के बीच परस्पर अत्यन्त सकारात्मक सम्बन्ध पाए गए हैं, इसे भी हमें नहीं भूलना चाहिए। बच्चों में कई भाषाओं का एक साथ सीखना किसी प्रकार की समस्या नहीं है तथा बहुभाषी समाज में भाषाई विविधता एक सरदर्द नहीं, बल्कि एक संसाधन है। भारत जैसे देश में, भाषाविदों (जैसे पण्डित, ओबरॉय तथा खूबचंदानी) ने बताया कि कैसे भिन्न-भिन्न भाषाएँ, बहुभाषी समाज में विविध भूमिकाएँ अदा करती हैं तथा इनकी वजह से लोग अपनी एकाधिक पहचान बनाए रख पाते हैं। ज़रूरत इस बात की भी है कि हम विभिन्न भाषाओं में छिपी सम्भावनाओं को पहचानें तथा इस बात को स्वीकारें कि घरेलू भाषाओं के प्रति हमारी हीनभावना बच्चों के मानस को ऐसी क्षति पहुँचाएँगी, जिससे वे कभी उभर नहीं पाएँगे।

जैसे कि ऊपर चर्चा की गई है, हमें इस बात के विश्लेषण की आवश्यकता है कि कैसे उपनिवेशकों के लिए, भाषा, शोषण के एक माध्यम के रूप में इस्तेमाल होती रही है। भारत देश के सन्दर्भ में, उदाहरण के तौर पर, अँग्रेज़ी ने संस्कृत तथा अरबी को हटाकर उनका स्थान ले लिया है तथा स्थानीय भाषा के प्रति जो हिकारत की भावना संस्कृत-अरबी से झलकती थी, वो अब अँग्रेज़ी के मार्फत सामने आने लगी। अन्ततः हमें इसके प्रति सजग रहना चाहिए कि भाषा सभी शैक्षणिक क्रियाओं का केन्द्र-बिन्दु है। यदि हम इन सभी बातों पर ध्यान देते हुए अमल करें, तो भाषा-सम्बन्धी एक बिलकुल नया पाठ्यक्रम तैयार होने लगेगा। इसका गहरा प्रभाव पद्धतियों एवं संसाधन, शिक्षक एवं प्रकाशक, शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम सभी पर पड़ेगा। इस सन्दर्भ में बच्चों के माता-पिता एवं समुदाय - विशिष्ट के सदस्यों को पाठ्यक्रम के संकलन, पाठ्यसूची

तथा शिक्षण-संसाधनों के विषय में विचार-विमर्श हेतु आमंत्रित करना एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

बहुभाषी कक्षा में तकनीकें

वह शिक्षक, जो बहुभाषावाद को समाज में एक संसाधन के रूप में देखता है, वह निःसन्देह रूप से, भाषा की कक्षा में, विभिन्न भाषाओं में छिपी सृजनात्मकता की सम्भावनाओं के दोहन का अधिकतम प्रयास करेगा। लक्षित भाषा के सन्दर्भ में, शुद्धता के साथ धाराप्रवाह वक्तव्य एवं सामाजिक व्यवहार में विशिष्ट कुशलता की प्राप्ति के प्रयास भाषा शिक्षण के प्रमुख उद्देश्य नहीं रहेंगे।

बच्चों को उपलब्ध संवाद तथा इनका नए एवं भाषा-रहित संवाद के साथ पारस्परिक व्यवहार इस नवीन भाषा प्रशिक्षण पद्धति का मुख्य केन्द्र-बिन्दु होगा। उदाहरण के लिए, दिल्ली जैसे शहरों में भाषा शिक्षण कक्षाओं (जहाँ कक्षाओं में विभिन्न भाषाएँ, जैसे तमिल, बंगाली एवं हिन्दी बोलने वाले बच्चे सहजता से मिलते हैं) में बच्चे किसी भी भाषा, जैसे बंगाली कविता से भी शुरुआत कर सकते हैं और उसका अनुवाद अँग्रेज़ी समेत अन्य भाषाओं में भी किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में, जब कक्षा में बंगाली कविता पढ़ी जाती है, तो बंगाली बच्चे स्वाभाविक रूप से कक्षा का संचालन करते हुए सहजतापूर्वक उसकी व्याख्या तथा विश्लेषण करते हैं एवं दूसरे बच्चे उस कविता को अपनी भाषा में अनुवाद करने की कोशिश

सिलबट्टा   सिलवटु   बंड
सिर मुहिडो   पाटा वरवंटा
अरयुव कल्लु   निसार   शिलतोड़ा
पटागुटि   शिळशिऴपुआ

अतिथि   मिज्माणु   प्रहुणा
पाहुणा   आलही
मेहमान   कुणिया   पाछ

ठांव गुन काजल ठांव गुन कालिख
तावला सो बावला धीरा सो गंभीरा
तल मुंडिया पाताल ढुंढ़िया
चिकने गलवा मलवा के
चुल्लु चुल्लु साधेगा दुआरे हाथी बांधेगा
चिड़िया करे खोंचा, चिड़ा करे नोचा
चिराग रोशन मुराद हासिल
जिधर मौला उधर आसफउद्दौला
तीन कचौरी नौ बराती खाओ चूरमचूर
दादा मरिहैं तो भोज करिहैं
तजल्ली को तकरार नहीं
ठेंगा थाम लवेदे हज़ार
जित चाहे तित बैठकर, तुरत करो बिसराम
जेकर पुरखा न देखल पोई, तेका घर खुरबंदी होई

करते हुए विभिन्न भाषाओं के बीच परस्पर समानता एवं भेद के मर्म को समझ सकते हैं।

यह बाद में आगे चलकर भाषा की प्रकृति एवं संरचना की चर्चा का विषय बन सकता है। वस्तुतः इस तरह के अभ्यास के कई प्रकार के लाभ होंगे। सीखने की प्रक्रिया में बच्चे सक्रिय भूमिका निभाते हैं। यहाँ मुद्दा भाषा नहीं है, फिर भी भाषा शिक्षण की प्रक्रिया बहुत विस्तृत रूप से चलती है। व्याकरण, जो कि भाषा का एक ऊबाऊ पहलू माना जाता है, उसे भी इस तरह के प्रयास के साथ मनोरंजक एवं सार्थक बनाया जा सकता है। साहित्यिक संवादों का सामाजिक एवं ऐतिहासिक मुद्दों के साथ पारस्परिक व्यवहार निःसन्देह कविता पर होने वाली चर्चा का मुख्य बिन्दु होगा।

बच्चों को कक्षाओं में न केवल घरेलू भाषाओं के प्रयोग की छूट होगी, बल्कि कक्षाओं में सृजनात्मक रूप से उनका इस्तेमाल भी किया जाएगा। इस प्रक्रिया में, शिक्षक स्वयं सीख रहे होंगे। संज्ञानात्मक चुनौतियाँ प्रदान करती हुई विभिन्न गतिविधियाँ भी आसानी से आयोजित की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए, बच्चों को अँग्रेज़ी में शब्दों के बहुवचन बनाने के नियम सिखाने की बजाय शिक्षक बच्चों के लिए ऐसी गतिविधियाँ आयोजित कर सकते हैं जिसमें विभिन्न भाषाओं के अन्तर्गत शब्दों के बहुवचन बनाने की प्रक्रिया की पड़ताल की जा सके।

सामग्री

उपरोक्त विचारों के प्रभाव से शिक्षण सामग्री में भी निःसन्देह रूप से मूल परिवर्तन आएँगे। हमें एक भाषा-विशेष से सम्बन्धित शिक्षण सामग्री के बारे में सोचना बन्द करना होगा बल्कि इसके स्थान पर हमारे पास भाषा, समाज एवं शिक्षा से सम्बन्धित सामग्री होगी। शिक्षक, माता-पिता तथा विद्यार्थी भाषा, क्षेत्र एवं विषय की सीमाओं से आगे बढ़कर शिक्षण-सामग्री को तैयार करने में सकारात्मक रूप से भाग लेंगे। तब किसी मानक पाठ्य पुस्तक की भी आवश्यकता नहीं रह जाएगी जो कि बहुत ही विविध सांस्कृतिक एवं भाषाई क्षेत्रों से आने वाले बच्चों की ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए किसी-न-किसी तरह तैयार कर दी जाती है। वास्तव में, बहुभाषा आधारित पाठ्यसामग्री का नमूना-सैट उपलब्ध करा देने पर बच्चे, माता-पिता एवं शिक्षक - सभी मिलकर अपनी अलग स्थानीय शिक्षण सामग्री तैयार कर सकते हैं।ऐसा करने से, स्थानीय भाषाएँ, इतिहास, भूगोल उपेक्षित विषय नहीं रह जाएँगे, बल्कि वे शिक्षा प्रणाली के मूल तत्वों का अभिन्न अंग बन जाएँगे।

इस शिक्षण सामग्री का मुख्य उद्देश्य वर्तमान सामाजिक यथास्थिति को बनाए रखना नहीं होगा अपितु उसका लक्ष्य समालोचनात्मक सजगता को विकसित करना होगा जिसकी सम्भवतः सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में अहम भूमिका होगी। भाषा प्रवीणता के बारे में केवल कुछ निश्चित कुशलताओं के रूप में नहीं, बल्कि पंक्तियों के बीच के मर्म की आलोचनात्मक परख की योग्यता एवं जीवन के विभिन्न पहलुओं-अनुभवों की अभिव्यक्ति के रूप में सोचना होगा।

शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षण

इस परिदृश्य में, जहाँ कक्षाएँ बहुभाषीय हैं, शिक्षकों की भागीदारी और भी बढ़ जाती है। सबसे पहले, शिक्षकों को तानाशाही हाव-भाव एवं अत्यन्त हावी उस्थिति की भावना न्यूनतम करनी होगी। शिक्षक का दायित्व विद्यार्थी को ज्ञान देना ही नहीं, बल्कि उनकी बातों को धैर्यपूर्वक सुनना भी है। पहला उद्देश्य, बच्चों के मन से संकोच को दूर करना है तथा बच्चों के लिए सहज वातावरण, जिसमें बच्चे स्वयं को सहजतापूर्वक व्यक्त कर सकें एवं जो करना चाहें कर सकें, तैयार करने के लिए हर सम्भव प्रयास करना है। भाषाशास्त्री एवं सांस्कृतिक मतभेद किसी भी मानदण्ड से विचलन के रूप में नहीं देखे जाते। शिक्षण के क्रम में, त्रुटियों को स्वाभाविक रूप से लिया जाता है, न कि ऐसी गलती जिसे दण्ड के ज़रिए सुधारना अनिवार्य हो। परिणामस्वरूप, शिक्षक प्रशिक्षण में मूल परिवर्तन अनिवार्य होंगे। प्रशिक्षक व रिसोर्स पर्सन ऐसा व्यवहार न करें, जैसे वे 'ज्ञानी' हैं व किसी दूसरी दुनिया से 'अप्रशिक्षित' शिक्षकों को 'सिखाने' आए हैं। एक शिक्षक, शिक्षक

प्रशिक्षण शिविर में अध्यापन के प्रचुर अनुभव एवं बच्चों की प्रतिक्रिया के अनुभव के साथ प्रवेश करता है। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम को इस अनुभव का सकारात्मक रूप से इस्तेमाल करते हुए तैयार किया जाना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि प्रशिक्षण में यह स्पष्ट होना चाहिए कि बहुभाषावाद का कक्षा में किस प्रकार से एक संसाधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। तुलनात्मक व्याकरण, भाषा प्रशिक्षण पद्धतियाँ, सभी प्रकार के विषयों का आलोचनात्मक पठन, विषयान्तर पठन, अभिनव कला, भाषा का सामाजिक भाषाशास्त्रीय पहलू, लेखन व्यवस्था का विकास तथा अभिव्यक्ति एवं लेखन के बीच सम्बन्ध, अनुवाद एवं अनुवाद प्रक्रिया का विश्लेषण, आँकड़े निकालना एवं बहुभाषी कक्षा में उनके विश्लेषण की तकनीक इत्यादि ऐसे शिक्षकप्रशिक्षण कार्यक्रम के महत्वपूर्ण घटक होंगे।

***

इन्सानी समूहों में, एकभाषिता की जगह बहुभाषिता ही सामान्य तौर पर पाई जाने वाली स्थिति है। समाज में बहुभाषीय योग्यता एवं संज्ञानात्मक लचीलेपन के बीच एक घनिष्ट सम्बन्ध देखने को मिलता है। इन्सान के लिए एक साथ कई भाषाएँ सीखना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वास्तव में, कई भाषायी-समुदायों में तो रोज़मर्रा की गतिविधियों एवं कार्यकलापों में मिश्रित भाषा का प्रयोग एक सामान्य चलन हो गया है। अतः एक बहुभाषीय कक्षा, समाज का ही एक अभिन्न अंग एवं सामान्य परिघटना है। हमें अपने बच्चों के मानसिक विकास हेतु एकभाषीय सीमाओं से ऊपर उठकर बेहतर शिक्षा और सामाजिक बदलाव की ओर प्रयास करना चाहिए। तदनुरूप, शिक्षण सामग्री, भाषा प्रशिक्षण के तरीके एवं शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में परिवर्तन अनिवार्य होंगे। यदि भाषा सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणाली का केन्द्र-बिन्दु है तो बहुभाषी कक्षा की क्षमताओं एवं सम्भावनाओं को जितनी जल्दी हम समझें, उतना ही हमारे लिए श्रेयसकर होगा।

रमाकान्त अग्निहोत्रीः दिल्ली विश्वविद्यालय से सेवा निवृत्त। व्यावहारिक भाषा-विज्ञान, शब्द संरचना, सामाजिक भाषा-विज्ञान और शोध प्रणाली पर विस्तृत रूप से पढ़ाया और लिखा है। 'नेशनल फॉकस ग्रुप ऑन द टीचिंग ऑफ इंडियन लेंग्वेजिज़' के अध्यक्ष रहे हैं। आजकल विद्या भवन सोसइटी, उदयपुर में एमेरिटस प्रोफेसर हैं।

अँग्रेज़ी से प्राथमिक अनुवादः निशी तिवारीः बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय से अँग्रेज़ी में स्नातकोत्तर। कई महाविद्यालयों में अँग्रेज़ी साहित्य पढ़ाया है। स्वतंत्र रूप से अनुवाद करती हैं। दिल्ली में रहती हैं।

यह लेख 'मल्टीलिंगुअल एजुकेशन फॉर साउथ अफ्रीका' पुस्तक से साभार। प्रकाशक - हाइनेमन, जोहनेसबर्ग (1995)।